भगत सिंह और नेहरू को लेकर प्रधानमंत्री मोदी ने जो बोला है, वो ग़लत नहीं बल्कि झूठ है

रवीश कुमार

नेहरू से लड़ते-लड़ते प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के चारों तरफ नेहरू का भूत खड़ा हो गया। नेहरू का अपना इतिहास है। वो किताबों को जला देने और तीन मूर्ति भवन के ढहा देने से नहीं मिटेगा। यह ग़लती खुद मोदी कर रहे हैं।

प्रधानमंत्री मोदी के लिए चुनाव जीतना बड़ी बात नहीं है। वे जितने चुनाव जीत चुके हैं या जिता चुके हैं यह रिकॉर्ड भी लंबे समय तक रहेगा। कर्नाटक की जीत कोई बड़ी बात नहीं है लेकिन आज प्रधानमंत्री मोदी को अपनी हार देखनी चाहिए। वे किस तरह अपने भाषणों में हारते जा रहे हैं। आपको यह हार चुनावी नतीजों में नहीं दिखेगी। वहां दिखेगी जहां उनके भाषणों का झूठ पकड़ा जा रहा होता है। उनके बोले गए तथ्यों की जांच हो रही होती है। इतिहास की दहलीज़ पर खड़े होकर झूठ के सहारे प्रधानमंत्री इतिहास का मज़ाक उड़ा रहे हैं। इतिहास उनके इस दुस्साहस को नोट कर रहा है।

प्रधानमंत्री मोदी ने अपना शिखर चुन लिया है। उनका एक शिखर आसमान में भी है और एक उस गर्त में हैं जहां न तो कोई मर्यादा है न स्तर है। उन्हें हर कीमत पर सत्ता चाहिए ताकि वे सबको दिखाई दें शिखर पर मगर खुद रहें गर्त में। यह गर्त ही है कि नायक होकर भी उनकी बातों की धुलाई हो जाती है। इस गर्त का चुनाव वे खुद करते हैं। जब वे ग़लत तथ्य रखते हैं, झूठा इतिहास रखते हैं, विरोधी नेता को उनकी मां की भाषा में बहस की चुनौती देते हैं। ये गली की भाषा है, प्रधानमंत्री की नहीं।

दरअसल प्रधानमंत्री मोदी के लिए नेहरू चुनौती बन गए हैं। उन्होंने खुद नेहरू को चुनौती मान लिया है। वे लगातार नेहरू को खंडित करते रहते हैं। उनके समर्थकों की सेना व्हाट्सऐप नाम की झूठी यूनिवर्सिटी में नेहरू को लेकर लगातार झूठ फैला रही है। नेहरू के सामने झूठ से गढ़ा गया एक नेहरू खड़ा किया जा रहा है। अब लड़ाई मोदी और नेहरू की नहीं रह गई है। अब लड़ाई हो गई है असली नेहरू और झूठ से गढ़े गए नेहरू की। आप जानते हैं इस लड़ाई में जीत असली नेहरू की होगी।

नेहरू से लड़ते-लड़ते प्रधानमंत्री मोदी के चारों तरफ नेहरू का भूत खड़ा हो गया। नेहरू का अपना इतिहास है। वो किताबों को जला देने और तीन मूर्ति भवन के ढहा देने से नहीं मिटेगा। यह ग़लती खुद मोदी कर रहे हैं। नेहरू-नेहरू करते-करते वे चारों तरफ नेहरू को खड़ा कर रहे हैं। मोदी के आस-पास अब नेहरू दिखाई देने लगे हैं। उनके समर्थक भी कुछ दिन में नेहरू के विशेषज्ञ हो जाएंगे, मोदी के नहीं। भले ही उनके पास झूठ से गढ़ा गया नेहरू होगा मगर होगा तो नेहरू ही।

प्रधानमंत्री के चुनावी भाषणों को सुनकर लगता है कि नेहरू का यही योगदान है कि उन्होंने कभी बोस का, कभी पटेल का तो कभी भगत सिंह का अपमान किया। वे आज़ादी की लड़ाई में नहीं थे, वे कुछ नेताओं को अपमानित करने के लिए लड़ रहे थे। क्या नेहरू इन लोगों का अपमान करते हुए ब्रिटिश हुकूमत की जेलों में 9 साल रहे थे?

इन नेताओं के बीच वैचारिक दूरी, अंतर्विरोध और अलग-अलग रास्ते पर चलने की धुन को हम कब तक अपमान के फ्रेम में देखेंगे। इस हिसाब से तो उस दौर में हर कोई एक दूसरे का अपमान ही कर रहा था। राष्ट्रीय आंदोलन की यही खूबी थी कि अलग-अलग विचारों वाले एक से एक कद्दावर नेता थे। ये खूबी गांधी की थी।

उनके बनाए दौर की थी जिसके कारण कांग्रेस और कांग्रेस से बाहर नेताओं से भरा आकाश दिखाई देता था। गांधी को भी यह अवसर उनसे पहले के नेताओं और समाज सुधारकों ने उपलब्ध कराया था। मोदी के ही शब्दों में यह भगत सिंह का भी अपमान है कि उनकी सारी कुर्बानी को नेहरू के लिए रचे गए एक झूठ से जोड़ा जा रहा है।

भगत सिंह और नेहरू को लेकर प्रधानमंत्री ने जो ग़लत बोला है, वो ग़लत नहीं बल्कि झूठ है। नेहरू और फील्ड मार्शल करियप्पा, जनरल थिम्मैया को लेकर जो ग़लत बोला है वो भी झूठ था। कई लोग इस ग़लतफ़हमी में रहते हैं कि प्रधानमंत्री की रिसर्च टीम की ग़लती है। आप ग़ौर से उनके बयानों को देखिए।

जब आप एक शब्दों के साथ पूरे बयान को देखेंगे तो उसमें एक डिज़ाइन दिखेगा। भगत सिंह वाले बयान में ही सबसे पहले वे खुद को अलग करते हैं। कहते हैं कि उन्हें इतिहास की जानकारी नहीं है और फिर अगले वाक्यों में विश्वास के साथ यह कहते हुए सवालों के अंदाज़ में बात रखते हैं कि उस वक्त जब भगत सिंह जेल में थे तब कोई कांग्रेसी नेता नहीं मिलने गया। अगर आप गुजरात चुनावों में मणिशंकर अय्यर के घर हुए बैठक पर उनके बयान को इसी तरह देखेंगे तो एक डिज़ाइन नज़र आएगा।

बयानों के डिज़ाइनर को यह पता होगा कि आम जनता इतिहास को किताबों से नहीं कुछ अफवाहों से जानती है। भगत सिंह के बारे में यह अफवाह जनसुलभ है कि उस वक्त के नेताओं ने उन्हें फांसी से बचाने का प्रयास नहीं किया। इसी जनसुलभ अफवाह से तार मिलाकर और उसके आधार पर नेहरू को संदिग्ध बनाया गया।

नाम लिए बग़ैर कहा गया कि नेहरू भगत सिंह से नहीं मिलने गए। यह इतना साधारण तथ्य है कि इसमें किसी भी रिसर्च टीम से ग़लती हो ही नहीं सकती। तारीख या साल में चूक हो सकती थी मगर पूरा प्रसंग ही ग़लत हो यह एक पैटर्न बताता है।

ये और बात है कि भगत सिंह सांप्रदायिकता के घोर विरोधी थे और ईश्वर को ही नहीं मानते थे। सांप्रदायिकता के सवाल पर नास्तिक होकर जितने भगत सिंह स्पष्ट हैं, उतने ही ऐग्नास्टिक (अनीश्वरवादी) होकर नेहरू भी हैं। बल्कि दोनों करीब दिखते हैं। नेहरू और भगत सिंह एक दूसरे का सम्मान करते थे। विरोध भी होगा तो क्या इसका हिसाब चुनावी रैलियों में होगा।

नेहरू का सारा इतिहास मय आलोचना अनेक किताबों में दर्ज है। प्रधानमंत्री मोदी अभी अपना इतिहास रच रहे हैं। उन्हें इस बात खूयाल रखना चाहिए कि कम से कम वो झूठ पर आधारित न हो। उन्हें यह छूट न तो बीजेपी के प्रचारक के तौर पर है और न ही प्रधानमंत्री के तौर पर।

कायदे से उन्हें इस बात के लिए माफी मांगनी चाहिए ताकि व्हाट्स अप यूनिवर्सिटी के ज़रिए नेहरू को लेकर फैलाए जा रहे ज़हर पर विराम लगे। अब मोदी ही नेहरू को आराम दे सकते हैं। नेहरू को आराम मिलेगा तो मोदी को भी आराम मिलेगा।

खबर (दार) झरोखा — **विकास नारायण राय**

राज दरबार में अपमानित लोकतन्त्र!

दिल्ली की केजरीवाल सरकार ने लम्बी जद्दोजहद के बाद सुप्रीम कोर्ट में मोदी सरकार की मनमानी के विरुद्ध, लोकतंत्र की लड़ाई जीत ली है। लेकिन स्वयं अपनी पार्टी में केजरीवाल की भी हैसियत किसी एकछत्र राजा से कम नहीं। आंतरिक लोकतंत्र से शून्य 'आप' में उनका कहा हुआ ही सर्वमान्य कानून होता है। यहाँ तक कि पार्टी में वरिष्ठतम सहयोगी, योगेन्द्र यादव और प्रशांत भूषण को जब से बेहद तिरस्कार के साथ बाहर का रास्ता दिखाया गया, एक लोकतांत्रिक चूं भी नहीं सुनी गयी।

अनिल विज की हरियाणा सरकार में पहचान एक बातूनी स्वास्थ्य मंत्री और अंड़गेबाज खेल मंत्री के रूप में है, जो वक्त-बेवक्त आरएसएस एजेंडा के मतलब से हिन्दुत्ववादी बयान देते मिल जायेंगे। उनकी तुनुकमिजाजी ऐसी कि दो वर्ष में एक ही महिला एसपी का दो अलग- अलग जिलों से तबादला करा चुके हैं- एक बार इस लिए कि उनके गेट आउट कहने के बाद भी वह मीटिंग से बाहर नहीं गयीं और दूसरी बार इसलिए कि वह उनकी मीटिंग में आ नहीं सकीं।

तपन सिकदर कम लोगों को याद होंगे। अटल बिहारी वाजपेयी के प्रधानमन्त्री काल में केन्द्रीय मंत्रिमंडल में एक जूनियर मंत्री और तब के पश्चिम बंगाल में भाजपा की कमान के मुख्य किरदार! राज्य में माकपा की सरकार होने के बावजूद सिकदर के गर्म साहबी मिजाज के कितने ही चर्चे सुने जा सकते थे। उन्हीं के क्षेत्र में आयोजित वाजपेयी की एक चुनावी सभा में वे प्रतिबंधित सुरक्षा घेरे को तोड़ कर उजड्ड समर्थकों के साथ जबरदस्ती घुसने लगे। रोके जाने पर जोर-जोर से चिल्लाना शुरू कर दिया। मंच से प्रधानमन्त्री ने कई बार हाथ हिलाकर स्थिति को सम्हाला।

सभा के बाद हताश वाजपेयी ने सिकदर की अच्छी खासी क्लास ले डाली। बोले, इस व्यवहार से चुनाव लड़ चुके, एक भी सीट जीतने का ख्याल छोड़ दो। आपातकाल के बाद हरियाणा में जनता सरकार के कई मंत्री दफ्तर में दोनों पैर मेज पर रखकर चमचों और अफसरों से मिलने को अपनी नयी राजसी शान के अनुरूप मानते थे।

गुजरे इतवार, पंचकुला में दिव्यांग सम्मान समारोह के नाम पर नागरिक अपमान का एक तमाशा हरियाणा के राज्यपाल और राज्य रेड क्रॉस के अध्यक्ष कप्तान सिंह सोलंकी की उपस्थिति में सम्पन्न हुआ। किसी ने ध्यान नहीं दिया था कि पैरों से विकलांग महिला भेंट लेने मंच तक कैसे जायेंगी। आमंत्रित को किसी तरह हॉल से घिसटते-घिसटते मंच पर रखी व्हील चेयर तक पहुंचना पड़ा। मिनटों तक आयोजक उनके रेंगने का यह नजारा सुखद अंदाज में देखते रहे। नहीं, मंच से या बाद में किसी ने उनसे इस बेहद अपमानजनक असुविधा के लिए माफी नहीं माँगी। यदि महामहिम को भी इसमें कुछ गलत लगा हो तो उन्होंने न उस समय व्यक्त किया और न बाद में।

कुछ ही दिन हुए, लोकतंत्र में नागरिकों के वोट से निर्वाचित उत्तराखंड के मुख्यमंत्री त्रिवेंद्र सिंह रावत ने किसी राजा की तरह आयोजित अपने 'जनता दरबार' से स्कूल शिक्षिका उत्तरा बहुगुणा पंत को रहमो-करम पर आश्रित प्रजा की तरह अपमानित कर बाहर फिंकवा दिया। पंत की दुर्गम स्थान से अपना तबादला कराने की जिद को रावत ने खुद की शाही शान में इतनी बड़ी 'गुस्ताखी' माना कि उन्होंने वहीं के वहीं पंत की गिरफ्तारी और मुअत्तली का आदेश भी सुना डाला।

उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री अजय बिष्ट उर्फ योगी आदित्यनाथ का भी ऐसी ही राजसी मानसिकता के तहत लोगों से मिलने के लिए दरबार लगता है। वहां आने वालों से उम्मीद की जाती है कि भगवाधारी को 'महाराज जी' कह कर संबोधित करें। दिल्ली में रिकॉर्ड मतों से चुनाव जीते अरविन्द केजरीवाल ने भी शुरू में लोकतान्त्रिक सरगर्मी से 'जनता दरबार' की शुरुआत की थी लेकिन एक-दो बार में ही इस पारदर्शिता से तौबा कर ली।

रावत, योगी और केजरीवाल तीनों में दरअसल विरासत से मिली एक सामंती परम्परा को ढोने की ही ललक मिलेगी न कि लोकतान्त्रिक असर। रावत संघी कायदे से हैं, योगी मठाधीश के रंग में रंगे हुये और केजरीवाल जन आन्दोलन के छद्म से निकले व्यक्ति। तीनों परिपाटी में लोकतंत्र नदारद है। तभी तीनों ने शासन के शीर्ष पर बैठते ही अपने-अपने तरीके से 'राज दरबार' का रवैया सहज अपना लिया। हालाँकि, भारतीय लोकतंत्र में शासक और नागरिक के बीच असमान रिश्तों को उजागर करने वाले कोई ये ही अजूबे उदाहरण नहीं हैं !

दरअसल, 'जनता दरबार' को एक संस्थागत रूप देने का श्रेय इंदिरा गांधी की राजनीतिक बाध्यताओं को जाना चाहिए। पार्टी सिंडिकेट से सत्ता संघर्ष के दौर में उन्होंने नियोजित जनता दरबारों के माध्यम से सफलतापूर्वक मंचित किया कि, पार्टी ढांचे से स्वतंत्र, जनता से उनका सीधा रिश्ता है। वे इसमें बेहद सफल भी रहीं।

राजीव गाँधी ने शाही नखरे से प्रधानमन्त्री की अपनी पारी शुरू की। विदेश सचिव को खड़े पैर बदल दिया। अपने सुरक्षा चीफ को, मनमाफिक कार न होने पर, अंडमान से वापस चलता कर दिया। हैदराबाद हवाई अड्डे पर उनके हाथों अपमान के एनटीआर प्रकरण से तेलुगु देशम पार्टी का जन्म इतिहास में दर्ज हो चुका है। बाद में, बोफोर्स मामले में घिर जाने के बाद उन्होंने सरकारी रेस कोर्स रोड आवास काम्प्लेक्स में होने वाले प्रायोजित जनता दरबारों के माध्यम से मां जैसा ही सन्देश देने की असफल कवायद की।

वीपी सिंह की 'बंद' कार्यशैली के चलते, उनके प्रधानमन्त्री बनने के चंद हफ्तों में ही इस 'अनावश्यक' रूटीन को अपनी मौत मरने दिया गया। इसके बाद शायद ही किसी प्रधानमन्त्री ने जनता दरबार को नियमित या संस्थागत रूप देने की पहल की हो। बेशक, सोनिया गांधी ने गर्दिश के दिनों में दस जनपथ में जनता दरबार का एक अनियमित सिलसिला जरूर चलाये रखा। लेकिन सोनिया संचालित प्रधानमन्त्री मनमोहन सिंह और मीडिया निर्मित प्रधानमन्त्री नरेंद्र मोदी ने इसे पूरी तरह दहन कर दिया। हालाँकि, इस राजनीतिक दौर में भी कई महत्वाकांक्षी मुख्यमंत्रियों में अपनी स्वतंत्र या जन-प्रिय छवि गढ़ने के लिए इस जाने-पहचाने मार्ग पर चलने का दिखावा अवश्य मिल जायेगा।

उदार वैश्वीकरण के भारत में पैर जमाने का दौर, कॉर्पोरेट शैली के राज दरबारों के मजबूत होते जाने का भी दौर है। उसी अनुपात में, सत्ता समीकरण में कमजोर पड़ते लोक के अपमानित होने का भी परिदृश्य निरंतर प्रतिबिंबित होता है। उत्तरोत्तर, राजनेताओं के व्यक्तिगत जीवन की ऐंठन में भी और उनकी शासकीय स्वेच्छाचारिता में भी।

यूँ ही नहीं एक दीन पृष्ठभूमि से निकला प्रधानमन्त्री का दस लाख का सूट अचानक चर्चा में आ गया। यूँ ही नहीं एक समाजवादी कहलाने वाले मुख्यमंत्री ने अपने निवास स्थान के सौन्दर्यीकरण पर करदाता का 63 करोड़ रुपया फूंक दिया। जयललिता का वार्डरोब और मायावती का इमेज मेकओवर, राजघरानों की परी कथा सरीखे लगते हैं। बुलेट ट्रेन और एम्फिबियन बस, पंच सितारा होटलों में इफ्तार दावत और पांच सौ करोड़ की शादी राज नेताओं की आम शैली बन चुकी हैं। सोचिये, ठोस वजह होगी कि दलित घरों में खाना खाने की होड़ अपमानजनक तरीके से संपन्न की जाती है।

बेशक, निरंकुश राजघरानों का सामंती जमाना चला गया हो, निरंकुश राज दरबारों का 'लोकतान्त्रिक' जमाना लम्बे दौर तक चलेगा।

पीएम मोदी जो विदेश यात्राएं करते हैं उनसे आखिर हासिल क्या हुआ ?

जनज्वार (विशेष) एक आरटीआई जो मोदी जी की विदेश यात्राओं के संबंध लगाई गयी वह बताती हैं कि नरेंद्र मोदी ने बीते चार वर्षों में कुल 41 विदेशी दौरे किये हैं जिसमें उन्होंने 52 देशों की यात्रा की हैं। इन यात्राओं के दौरान पीएम मोदी करीब 165 दिनों के लिए विदेश में रहे। पीएमओ के मुताबिक मोदी ने 30 यात्रा चार्टर्ड विमान के जरिए की है और उन्होंने अपनी विदेश यात्रा पर 355 करोड़ रुपए ऑफिशियल रूप से खर्च किए हैं।

लेकिन इन यात्राओं से कितना विदेशी निवेश भारत मे आया है यह आंकड़े जानकर आप हिल जाएंगे।

सरकारी आंकड़े बता रहे हैं कि मोदीराज के चौथे साल में देश के प्रत्यक्ष विदेशी निवेश (एफडीआई) की वृद्धि दर पांच साल के निचले स्तर पर आ गया है। इस साल एफडीआई 2017-18 में उत्र की गिरावट के साथ 44.85 अरब डॉलर पर है जो पांच सालों में सबसे कम है। यानी जैसे जैसे मोदी जी के विदेशी दौरे बढ़ते गए वैसे वैसे प्रत्यक्ष विदेशी निवेश कम होता गया।

आंकड़ों की माने तो दुनियाभर के उभरते बाजारों में किये जा रहे निवेश में से हर 100 डॉलर में से भारत का हिस्सा महज 9.5 डॉलर रह गया है, यह साल 2015 में 16 डॉलर से भी ऊपर था।

संयुक्त राष्ट्र संघ के सम्मेलन की रिपोर्ट से भी यह बात जाहिर होती है कि 2017 में भारत में एफडीआई घटकर 40 अरब डॉलर रहा है जो 2016 में 44 अरब डॉलर था। जबकि विदेशी निवेश की निकासी दोगुने से ज्यादा बढ़कर 11 अरब डॉलर रहा है, जबकि भारतीय निवेशकों द्वारा अन्य देशों में किया गया निवेश 1,100 करोड़ डॉलर के साथ दोगुने से ज्यादा हो गया है। यानी भारत के व्यापारी भी भारत मे पैसा लगाने के बजाए विदेशों में लगा रहे हैं।

वैसे भारत में सबसे ज्यादा विदेशी निवेश करने वाले देशों की बात करें तो आज भी इसमें मॉरीशस सबसे ऊपर है, जिसे भाजपा के मंत्री काले धन का सबसे बड़ा स्रोत बताया करते थे, भारत में मॉरीशस ने 15.94 बिलियन डॉलर का निवेश किया है। इसके बाद सिंगापुर (12.18 बिलियन डॉलर), नीदरलैंड्स (2.8 बिलियन डॉलर) का नाम है। कुल मिलाकर बात करे तो मोदी जी के विदेश दौरे पूरी तरह फेल साबित हुए हैं। इनको देखकर 'नाम बड़े और दर्शन छोटे' जैसी कहावत ही याद आती है।